IJCRT.ORG ISSN : 2320-2882

INTERNATIONAL JOURNAL OF CREATIVE RESEARCH THOUGHTS (IJCRT)

An International Open Access, Peer-reviewed, Refereed Journal

जल स्थापत्य की अनमोल धरोहर : कालीबॉय बावड़ी, खण्डेला

म्होर सिंह मीणा

सहायक आचार्य, इतिहास

राजकीय कमला मोदी महिला महाविद्यालय, नीमकाथाना

शोध सारांश : – वर्तमान तक हुए अनुसंधानों से ज्ञात होता है कि शेखावाटी क्षेत्र में स्थित बावड़ियों की स्थापत्य कला परम्परा आधुनिक काल में एका–एक नहीं आयी। इसका एक क्रमिक विकास हुआ होगा। खण्डेला क्षेत्र में मध्यकालीन एवं पूर्व आधुनिक काल के बावड़ियां, झालरा स्थित हैं, जिनमें मुख्य बावड़ियां बहुजी की बावड़ी, माजी की बावड़ी, ब्रह्मपुरी में द्रौपदी की बावड़ी, ब्रह्मपुरी में पौदारों की बावड़ी, मूनका की बावड़ी, पलसानियों की बावड़ी, सोनगिरी बावड़ी, कालीबाय बावड़ी, काना की बावड़ी, द्वारकादासजी की बावड़ी, लाला की बावड़ी, पनिहाराबास में आधीकाली बावड़ी, कैरपुरा में हमीर सिंह की बावड़ी, सलेदीपुरा बांध की बावड़ी बनी हुई है, जो तत्कालीन स्थापत्य शैली को संजोये हुये है। ये बावड़ियां स्थापत्य की स्थानीय परम्परा की द्योतक हैं। यहाँ की स्थापत्य कला स्वतंत्र नहीं थी या अन्य संस्कृति के सम्पर्क के परिणामस्वरूप उभर कर आयी है। अभी तक इस विषय पर विद्वानों का ध्यान आकर्षित नहीं हुआ है। प्रस्तुत शोध पत्र में कालीबॉय बावड़ी के माध्यम से खण्डेला की बावड़ियों पर विभिन्न स्थापत्य संस्कृतियों का प्रभाव तथा कालीबॉय बावड़ी के क्षेत्र का सांस्कृतिक इतिहास के विभिन्न पक्षों को उजागर किया जायेंगा।

उद्देश्य :–प्रस्तुत शोध पत्र के माध्यम से खण्डेला में विकसित स्थानीय बावड़ी स्थापत्य के विकास की जानकारी प्राप्त करना तथा कालीबॉय बावड़ी के सांस्कृतिक इतिहास को स्पष्ट करना।

संकेताक्षर :– बावड़ी स्थापत्य, स्थानीय परम्परा, धाराओं, मूक साक्षी, तीर्थ, जलप्रबन्धन, जलसंचय प्रणाली, सीढीदार कुएं, शासन परिवर्तन, वैराग्य, तपोस्थली, बरामदे, कुण्डी, पीलाखाना, सरावजी, वास्तुकलां।

प्रस्तावना :– राजस्थान के सीकर जिले में स्थित खण्डेला नगर अपनी प्राचीनता के लिए प्रसिद्ध है। इस नगर ने अनेक राज शक्तियों का उत्थान–पतन देखा है तथा सामाजिक एवं सांस्कृतिक धाराओं को परिवर्तन के दौर से गुजरते हुए अपने दृष्टि पथ में रखा है। अनेक युग परिवर्तन की धाराओं का यह मूक साक्षी रहा है। मध्यकाल में सामन्ती शासन के शौर्य के साथ–साथ जागीरी व्यवस्था के क्रूर परिवेश में पिसते हुए कृषक वर्ग के दुःख–दर्द को इसने अपनी आँखों से निहारा है।[1] खण्डेला शहर अपने वैभव और पतन का साक्षी भी रहा है। साथ ही इस नगर ने विभिन्न काल में विकसित विभिन्न संस्कृतियों के समागम को भी देखा है। इन विभिन्न संस्कृतियों के परिवेश में खण्डेला शहर की जलप्रबन्धन की स्थानीय बावड़ी जल स्थापत्य का विकास हुआ है।

भारतीय वैदिक साहित्य में जल को नीर, सलिल, अंबू, वारि, पय, आप कहा है। इसे पवित्र तथा तीर्थ स्वरूप माना है। भारत में नदियों के जल को पवित्र माना है। इन नदियों के समान ही भारतीय धर्म ग्रन्थों में कुएं, तालाब, बावड़ी का जल भी पवित्र माना है। इसलिए भारत में प्राचीन काल से ही मनुष्य के पुण्य धर्म और यश के लिए तालाब, कुएं एवं बावड़ियां बनाने की परम्परा दिखाई देती है।[2] जल प्रबन्धन की यह परम्परा भारत में पाषाण काल में नवपाषाण युग में कुम्हार के चाक एवं उससे बर्तन बनाने की कला के विकास तथा नदियों के किनारे स्थाई बस्तियों का निर्माण, कृषि क्रियाकलापों उद्भव से ही विद्यमान थी। भारत में जल प्रबन्धन कला का उन्नयन रूप गणेश्वर ताम्र पाषाण संस्कृति में पाये छोटे–छोटे बांध प्रबन्धन, हड़प्पा सभ्यता में धौलावीरा कृत्रिम रॉक कट बांध निर्माण, मोहन जोदड़ों के विशाल सीढीदार स्नानागार एवं कुएं तथा सिन्धु सभ्यता की उत्तम नाली व्यवस्था में दिखाई देता है।

भारत में जल प्रबन्धन का इतिहास सिन्धु सभ्यता से शुरू होता है, वैदिक काल, मौर्यकाल में सुदर्शन झील निर्माण, नंद शासन काल में उड़ीसा में नहर निर्माण एवं पूर्वमध्य काल में गौड़ शासकों द्वारा जलप्रबन्ध की सामाजिक प्रशासनिक व्यवस्था का निर्माण करना, चोल काल में तड़ाग व्यवस्था, मध्यकाल में विजय नगर की जल व्यवस्था उत्तम थी। पारम्परिक जल व्यवस्था क्षेत्र की जलवायु, मिट्टी, बारिश, नदी–नालों, झरनो तथा भूमिगत जल की उपलब्धता के आधार पर भारत के अलग–अलग क्षेत्र में उसके अलग–अलग नाम है, यथा – हिमालय पर्वतीय प्रदेशों में – जम्मू और कश्मीर एवं हिमाचल प्रदेश में इसे कुहल (नहरी तंत्र) तथा मोघा (कच्ची नालियां) कहते है। लद्दाख में इसे जिंग, उत्तरप्रदेश में होजी (छोटा तालाब या नाला), दार्जिलिंग, सिक्किम में बांस के पाइपों से जल प्रबन्ध वाला झोरों नागालैंड में जाबो या रूजा प्रणाली कहते है। गंगा–ब्रह्मपुत्र के मैदानी क्षेत्र में जल प्रबन्ध कुएं, नहरे एवं झालरे बनाये गये है। हरियाणा में जल संचय के लिए ''आबी'' भी बनाये जाते है। बिहार में जल संचय के लिए ''आहर–पइन'' परम्परागत व्यवस्था है। बंगाल में दूंग (छोटी–छोटी नालियों में जाम्पोई विधि से जल संचय किया जाता है। असम में 'बेग' (पोखरों) में जल संचय किया जाता है। पठारी क्षेत्रों (मध्यप्रदेश) में हवेली प्रणाली तथा केरे प्रणाली (कर्नाटक), महाराष्ट्र में 'फड' प्रणाली से जल प्रबन्धन किया जाता है। तटीय मैदान एवं भारतीय द्वीप समूह और गुजरात, राजस्थान, हरियाणा में जल प्रबन्ध के लिए वाब (बावड़ियां) बनायी गई

है। आयुर्वेदाचार्य सुरपाल ने 10 कुएं एक तालाब के बराबर, 10 तालाब एक झील के बराबर, 10 झीलें एक पुत्र के बराबर और 10 पुत्र एक पेड़ के बराबर बताया है। बावड़ियां (सीढीदार कुएं) या जलमंदिर सीढिया 10 पेड़ों से भी श्रेष्ठ है, क्योंकि बाव, बावड़ी, बावरी, बादली का निर्माण शुष्क क्षेत्रों में किया जाता है। खण्डेला क्षेत्र भी राजस्थान के मरूप्रदेश के शेखावाटी के शुष्क क्षेत्र के सीकर जिले कांतली नदी की उपत्यकाओं में विद्यमान है। इस क्षेत्र का आधा भाग मरूस्थलीय एवं आधा भाग अरावली पर्वतमाला से निर्मित है। अतः यहां पर बावड़ियों का निर्माण सुगम था। इसलिए खण्डेला क्षेत्र में 52 बावड़ियों का निर्माण यहां के राजा–रानी एवं महाजन वर्ग ने करवाया था।

सामान्यतः बावड़ी कुंड एवं दीर्घिका के विशेषताओं के सम्मिश्रण से बनाई जाती है। बावड़ियां सामान्यतः ईंटो–पत्थरों से निर्मित सीढीदार कुएं है, जो 3 प्रकार के होते है :– 1. आठ भुजा वाले कुएं 2. वर्ग आकार के कुएं 3. आयत आकार के कुएं। यह कुएं वहां बनाये जाते है, जहां पानी का स्तर जमीन से काफी नीचे हो। खण्डेला क्षेत्र की बावड़ियां अष्टभुजाकार को छोड़कर शेष दो प्रकार की है। खण्डेला की बावड़ियों में भी भारत की अन्य बावड़ियों की तरह सीढियों का निर्माण योजना श्रृंखला तथा अन्तराल युक्त ही किया गया है, ताकि बावड़ियों के घटते–बढते जलस्तर के आधार पर पानी आसानी से सीढियों के माध्यम से निकालकर उपयोग किया जा सके।

कालीबॉय बावड़ी

स्थिति – खण्डेला कस्बे के दक्षिण में खण्डेला पलसाना मार्ग पर जीर्ण–शीर्ण अवस्था में यह बावड़ी अवस्थित है। यह बावड़ी खण्डेला से रॉयल मार्ग एवं खण्डेला से पलसाना मार्ग के मध्य में स्थित है। मध्यकाल में यह रास्ता खण्डेला से आमेर जाने का था उस पर अवस्थित है।[3] इसे बावड़ी के निर्माण में 17 वर्ष लगे थें। यह बावड़ी खण्डेला के शासक नाथूदेव निर्वाण के शासन काल में बनाई गई थी। पं. झाबरमल शर्मा ने इसके शिलालेख को बावड़ी पर न देखकर अजमेर म्युजियम में देखा था। इस शिलालेख के पाठ का आशय है कि संवत् 1575 फागुण सुदी (शुक्ला), 13 को अग्रवाल गोत्र के कोल्हा के पुत्र प्रथीराज तथा उसके पुत्र रामा और बाल्हा ने इस बावड़ी का निर्माण शुरू किया तब खण्डेला का शासक नाथूदेव था और दिल्ली पर सुल्तान इब्राहीम लोदी का राज्य था। यह निर्माण कार्य विक्रम संवत् 1592 को जेठ सुदी में पूरा हुआ, तब दिल्ली पर सिर्फ हुमायूं का शासन था। इस लेख के एक कोण पर 20 का यंत्र खुदा हुआ है। अब यह शिलालेख कालीबॉय से हटा दिया गया।[4]

इस अभिलेख से दिल्ली में शासन परिवर्तन की जानकारी मिलती है। दिल्ली सल्तनतकाल से मुगलकाल में प्रवेश होती हुई दिखाई देती है। इस संक्रमण काल में दिल्ली पर 3 शासकों ने शासन किया – 1. इब्राहिम लोदी 2. बाबर और 3. हुँमायू। इस अभिलेख से यह स्पष्ट नहीं होता है कि बावड़ी का निर्माण क्यों करवाया था, लेकिन यह बावड़ी मध्यकालीन खण्डेला ग्राम से लगभग 1.5 कि.मी. दूर

घाटेश्वर के पास है। घाटसु (घाटेश्वर) खण्डेला की प्राचीनकालीन बस्ती है, जहाँ नाथ सम्प्रदाय का प्रभाव रहा है। यहाँ पर खण्डेला की पश्चिमी पहाड़ी है, जहाँ क्षेत्रनाथ की धूणी है।[5]

स्थानीय मान्यता के अनुसार क्षेत्रनाथ जी कश्मीर के किसी नरेश के पुत्र थे। वे चार भाई थें। चारों भाईयों ने वैराग्य ले लिया और विचरण करते हुए राजस्थान के खण्डेला भू–भाग में आ गये थें। खण्डेला क्षेत्र में यह महात्मा क्रमशः 1. वरखण्डी जी लोहार्गल 2. चेतनदास जी गोल्याणा (लोहार्गल) 3. शिवनाथ जी शंकरा देवी (सकराय) और 4. श्री खेतरनाथ जी (क्षेत्रनाथ जी) खण्डेला के पश्चिमी पहाड़ पर रहने लगे थें। उन्होंने यहाँ पर कई चमत्कार किये जैसे चनो के कंकर बना देना तथा कंकरों से वापस चने बना देना। इन चमत्कारों के कारण वे खण्डेला क्षेत्र में लोक देवता के रूप में प्रसिद्ध हो गये। इस बावड़ी के पास घाटसू (घाटेश्वर) में जालम गिरिजी (नागाजी) की छत्री बनी हुई है। यह जोगी सम्प्रदाय के प्रसिद्ध संत थें। यह संत निर्वाण शासक नाथू जी के समकालीन थें।[6] इनके चमत्कारों के कई किस्से खण्डेला क्षेत्र में प्रसिद्ध है – जिनमें कुम्भ के मेले में गोपीचन्द भृर्तहरि को भक्त द्वारा नमस्कार कहने का किस्सा काफी प्रसिद्ध है।

इस प्रकार यह बावड़ी न केवल पथिकों की प्यास बुझाने के लिए बनाई गई थी। बल्कि यह योगी सम्प्रदाय के साधुओं की तपोस्थली भी थी। इस बात की पुष्टि कालीबॉय बावड़ी में नीचे के तल में उत्कीर्ण योग मुद्रा वाले यक्ष की मूर्ति से होती है। इस प्रकार इस बावड़ी का धार्मिक महत्त्व भी था। जहाँ तक इस बावड़ी के कलात्मक स्थापत्य की बात है, तो इस बावड़ी की सीढ़ियां कचरे से भरी है। बावड़ी पूर्णतया जर्जर है। लेकिन बावड़ी की पश्चिम से पूर्व में लम्बाई 125 फिट है। बावड़ी की चौड़ाई लगभग 55 फिट है। बावड़ी के पूर्व दिशा में कुंआ बना हुआ है। बावड़ी पश्चिमाभिमुखी है। बावड़ी का कुंआ वृत्ताकार बना हुआ है। इस कुंए के पूर्वी हिस्से ढाणा एवं जगती बनी हुई है। जगत भूवण लगाने के निशान है तथा पूर्व में सारण भी बना हुआ है, जिससे यह अनुमान लगाया जाता है कि कुंए से चरस–बैलों की सहायता से पानी निकाला जाता होगा और खेती भी की जाती होगी। कुएं के पास पश्चिमी दिशा में झरोखेदार बरामदे बने हुये है, जो लगभग 12 फिट ऊँचे तथा 5 फिट चौड़े है। यह बरामदे बावड़ी के 7 तलों तक बने हुये है। अभी देखने में बावड़ी के 6 तल ही दिखाई देते है, लेकिन स्थानीय लोग इस बावड़ी को सात मंजिला मानते है।

यह बरामदे स्नान, आराम, जल यौगिक क्रियाएं तथा धार्मिक अनुष्ठान के लिए बनाये गये थें। इन बरामदों के बाद पश्चिमी दिशा में इस बावड़ी की आयताकार कुण्डी बावड़ी मध्य के बरामदों से 4 फिट गलियारों से जुड़ी हुई है। बावड़ी के बीच में बने यह बरामदे भी 5 फिट चौड़े एवं 12 फिट ऊँचे है तथा बावड़ी में सात तलो में बने हुए है। बावड़ी में कुएं के बरामदों से लेकर प्रथम कुण्डी में बरामदों तक पहले दोनों दिशाओं में रास्तों को भी सबसे ऊपरी तल पर उत्तर एवं दक्षिण दिशा में हिन्दू शैली के मेहराबदार बरामदे बने हुये थे। जो अब नष्ट हो गये है। मध्य स्तर के बरामदे पश्चिमी दिशा में सीढ़ियों

से जुड़े है। यह सीढियां भी स्थानीय पत्थरों को जोड़कर बनाई गई है। इस बावड़ी के निर्माण में खण्डेला के पश्चिमी पहाड़ी के पत्थर, चूना, कांकरे, खोर, मेथी, गुड़, मोरण्डा भट्टी में पकाकर पत्थर पर पिसाई करके उसके लेप से चिनाई का कार्य किया गया है। इस बावड़ी के निकट रहने वाले बोदूराम सैनी ने बताया कि इस बावड़ी में रामपुरा के पत्थरों का भी इस्तेमाल किया गया था।

इस बावड़ी की प्राचीनता के बारे में सीकर के हरदयाल संग्रहालय की क्यूरेटर श्रीमती धर्मजीत कौर का कहना है कि इसकी दीवारों पर 8वीं सदी की प्रतिमाएं लगी हुई है। अतः यह बावड़ी दिल्ली सल्तनत काल से भी प्राचीनकाल की है। खण्डेला के इतिहास के लेखक अनुसार खण्डेला पूर्व मध्यकाल में जैन धर्म का केन्द्र था। खण्डेलवाल जाति की वंशावली से ज्ञात होता है कि 8वीं सदी में जैन मुनि जिनसेनाचार्य खण्डेला आये थें। खण्डेला के नागवंशी चौहान राजा तथा जनता को जैन धर्म में दीक्षित किया था, जिससे खण्डेलवाल जाति माहेश्वरी जाति, विजयवर्गीय एवं सरावगी जैनों की उत्पत्ति हुई थी।[7] सरावगी जैन टीला इस बावड़ी के पास में पूर्वी दिशा में है, जिसे पीला खाना कहते है। यह स्थान दिगम्बर जैन समाज का धार्मिक एवं सांस्कृति सभ्यता का 8वीं सदी में प्रमुख केन्द्र था। इस सरावगी टीले में 8वीं सदी में प्लेग रोग (मलवाई) से बचने के लिए उपनगर के रूप में बसाया गया था। यहाँ पर ही जैन मुनि सेनाचार्य ने लोगों तथा राजा को जैन धर्म में दीक्षित किया था।[8]

डॉ. कासलीवाल ने सम्वत् 1779 फागुनसुदी 14 को श्रावकोत्पति के बारे इस तरह बताया कि श्री महावीर वर्धमान जी मुक्ति पधारया 630 बरस पाछै अपराजित के बारै श्री जिनसेनाचार्य जी खण्डेलगिरि नाम राजा छौ तिने खण्डेला माहै संबोध्या जदिधो खण्डेलवाल श्रावक जूवा जी की ब्योरो''[9] श्री मांगीलाल जी भूतोड़िया के अनुसार कालान्तर में क्षत्रिय कुल के इन जैन धर्मावलम्बी खण्डेलवालों को ''श्रावक (सरावजी) कहा जाने लगा, जिसने सरावगी नाम से प्रसिद्ध हुए।[10] 13वीं सदी में यहाँ जिन प्रभसूरि खण्डेला आये थें सरावगी टीले के पास रहे थें। सिद्धसेन सूरि ने सकल तीर्थ सूत्र में बावड़ी के आस–पास के स्थान को तीर्थ कहा है। इस बावड़ी की वास्तुकला पर जैन स्थापत्य कला प्रभाव दिखाई देता है। इस पर सल्तनतकाली वास्तुकला का कम प्रभाव है। गुर्जर प्रतिहार वास्तुशैली का प्रभाव ज्यादा है।

निष्कर्ष :– खण्डेला की कालीबॉय बावड़ी का निर्माण एक काल विशेष में नहीं हुआ था। इसका क्रमिक विकास हुआ था। यह बावड़ी 8वीं सदी में जैनधर्म की खण्डेला में प्रवेश के समय पवित्र तीर्थ के रूप में विकसित हुई थी। बाद में यह स्थान योगी सम्प्रदाय की तपोस्थली के रूप में विकास किया। सल्तनत काल में यह बावड़ी निर्वाणों की जल प्रबन्ध की बावड़ी स्थापत्य के रूप में उभर कर सामने आयी। मुगल राजपूत काल में पथिकों के विश्रामग्रह के रूप में उपयोग होने लगा तथा जल संचय प्रणाली के रूप में कुएं से सिंचाई तथा पानी आपूर्ति की जाने लगी। लेकिन आधुनिक काल में नलकूप एवं ट्यूबवेल प्रणाली से खण्डेला क्षेत्र डार्क जोन में चला गया। इस कारण इस बावड़ी का पानी भी नीचे चला गया। 1980 के

बाद कालीबॉय बावड़ी की उपयोगिता समाप्त हो गई। सामान्य जनता तथा सरकार ने इसकी ओर ध्यान नहीं दिया। अतः यह इतनी महत्त्वपूर्ण कालीबॉय बावड़ी नष्ट होने के कगार पर आ गई। इस ऐतिहासिक जल स्थापत्य की अनमोल धरोहर को आज संरक्षण की आवश्यकता है।

संदर्भ ग्रन्थ :–

1. डॉ. मिश्रा रतन लाल ; खण्डेला के सांस्कृतिक वैभव की भूमिका साभार तिवाड़ी रघुनाथ प्रसाद ''उमङ्ग ; 'खण्डेला क्षेत्र का सांस्कृतिक वैभव' प्रकाशक : ऋचा प्रकाशन, जयपुर, प्रथम संस्करण, 2011, पृष्ठ–1।
2. डॉ. जुगनू कृष्ण एवं प्रो. शर्मा भंवर ; अपराजित पृच्छा (भुवनदेवाचार्य), दिल्ली, वर्ष–2011, भाग–1, सूत्र–75, श्लोक–35, पृष्ठ–432
3. डॉ. व्यास रीतेश ; जल स्रोतों के निर्माण की तकनीक और महत्ता (शेखावाटी अंचल) राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, जयपुर, प्रथम संस्करण–2021
4. डॉ. शर्मा झाबरमल एवं शर्मा श्यामसुन्दर पंडित ; खाटू के श्याम बाबा का इतिहास, पृष्ठ–139 एवं शेखावत सुरजन सिंह – शेखावाटी के शिलालेख एक अध्ययन, पृष्ठ–62
5. शर्मा, सूर्यनारायण ; खण्डेले का इतिहास, कोरोनेशन यंत्रालय, आगरा
6. डॉ. निर्वाण देवीसिंह पपूरना ; निर्वाण वंश प्रकाश, वर्ष–1957
7. उमंग तिवाड़ी रघुनाथ प्रसाद ; खण्डेला क्षेत्र का सांस्कृतिक वैभव, पृष्ठ–150
8. डॉ. गुप्ता मोतीलाल ; खण्डेलवाल जाति का प्रारम्भिक इतिहास
9. डॉ. कासलीवाल कस्तुरचन्द ; खण्डेलवाल जैन समाज का वृहद् इतिहास, प्रथम खण्ड, पृष्ठ–67
10. भूतोडियों जी मांगीलाल ; इतिहास की अमरबेल, ओसवाल, पृष्ठ–108